छायावाद युगीन काव्य–पुस्तक समीक्षा

– डॉ कुमार वीरेन्द्र सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
गणेश लाल अग्रवाल महाविद्यालय,
नीलाम्बर पीताम्बर विश्वविद्यालय,
मेदिनीनगर, पलामू।

Objectives of the Project :

छायावाद (1918–1936) हिन्दी कविता का एक बहुचर्चित एवं महत्त्वपूर्ण युग है। इस युग की कविता–पुस्तकों की समीक्षा तद्युगीन पत्रिकाओं यथा – सरस्वती, माधुरी, चाँद, मतवाला, विशाल भारत, सुधा, हंस आदि में बिखरी पड़ी हैं, जिनका न तो आज तक संचयन का प्रयास हुआ न ही आलोचना के विकासमान परिदृश्य को रेखांकित करने की दृष्टि से मूल्यांकन। जबकि व्यावहारिक समीक्षा की शुरूआत् पुस्तक–समीक्षा से ही हुई है। छायावाद युगीन काव्य–पुस्तक समीक्षा पर माइनर प्रोजेक्ट के तहत अध्ययन–लेखन का उद्देश्य इस बात का मूल्यांकन करना है कि छायावाद युगीन काव्य–पुस्तक समीक्षाओं ने आलोचना के प्रतिमान–निर्धारण में कैसी भूमिका निभायी है, साथ ही परवर्ती आलोचना के विकास में उनकी क्या भूमिका रही है। छायावाद पर हो रहे बौद्धिक हमलों का प्रतिकार तत्कालीन कवियों ने भी किया और इसके लिए उन्होंने पुस्तक–समीक्षा को माध्यम बनाया। इसकी परख भी परियोजना के महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक है।

Summary of the findings (in 500 words) :

छायावाद युगीन कविता–पुस्तक समीक्षा पर काम करते हुए मैं इस प्रश्न से प्रायः टकराता रहा हूँ कि छायावाद युगीन कविता पुस्तक समीक्षाओं से आखिर हासिल क्या होगा? इसी से जुड़ा हुआ सवाल यह भी कि छायावाद ने हिंदी साहित्य को पुस्तक समीक्षा के जरिये क्या दिया? ऐसे सवालों का जवाब पाने के लिए आवश्यक है कि तत्कालीन रचनाओं के साथ–साथ पुस्तक–समीक्षाओं से होकर गुजरा जाए। छायावाद युगीन कविता–पुस्तक समीक्षाओं से गुजरना परंपराजीविता है, जो परवर्ती साहित्य के लिए प्रासंगिक और उपयोज्य है। यहाँ परंपराजीवी होकर हम यह बोध प्राप्त कर सकते हैं कि छायावाद की कविता–पुस्तक समीक्षाओं ने एक निर्माणकारी भूमिका का निर्वाह किया है और यह भूमिका महज साहित्य तक ही सीमित नहीं है, वरन् एक समावेशी संस्कृति के निर्माण तक प्रसरित है। हालांकि संस्कृति का एक रूढ़ स्वभाव है कि वह प्रश्नमुखी नहीं होती है, लेकिन छायावादी कविता–पुस्तक समीक्षकों के हाथों निर्मित संस्कृति प्रश्नमुखी भी है और प्रश्नाकुल भी। इस दृष्टि से कहें तो छायावाद ने सांस्कृतिक जड़ों के इर्द–गिर्द जीम अनुर्वर मिट्टी को उलट–पलटकर ऊर्जस्वित करने का भी काम किया। छायावाद वैचारिक जड़ता के प्रति विद्रोही रूख अख़्तियार कर उपस्थित हुआ था। सांस्कृतिक जड़ता पर प्रहार छायावाद में ही संभव हुआ और इसमें भी पुस्तक–समीक्षकों ने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। यद्यपि कि छायावादयुगीन दस प्रतिशत पुस्तक–समीक्षक द्विवेदीयुगीन नैतिकतापूर्ण संस्कृति

के परम आग्रही बने हुए थे इसलिए तोड़–फोड़, प्रहार और विद्रोह इनके बूते से बाहर की चीजें थीं। पर बहुलांश समीक्षकों में, असहमति का विवेक था, जिनकी स्थापनाओं के आधार पर छायावादी आलोचना ने रूपाकार ग्रहण किया इस रूपाकार को फार्मूलाबद्धता का पर्याय नहीं समझा जाना चाहिए। छायावाद युगीन काव्य–पुस्तक समीक्षाओं के बीच होकर गुजरने से सहज मालूम पड़ता है कि एक ही समय में छायावाद का विरोध और समर्थन दोनों हो रहा था। आरोप–प्रत्यारोप, आलोचना–प्रत्यालोचना उक्ति–कटूक्ति का ऐसा दौर चला कि कोई छायावादी कविता पर अपना असीम प्यार लुटाने को आतुर था, तो कोई छायावाद को मायावाद साबित करने में अपनी कलम गीली कर रहा था। इन दोनों अतियों के बीच सधी हुई समालोचना की जवाबदारी भी दिखती है। यह तीसरी धारा ही आलोचना के प्रतिमान निर्धारित करने में सफल हुई। पुराने संस्कारों के प्रति विद्रोही चेतना से लैस हाने के कारण छायावाद को तमाम वैचारिक विरोध, असहमतियों का सामना करना पड़ा। छायावाद युगीन कविता–पुस्तक समीक्षाओं के माध्यम से छायावाद को जिस कड़े विरोध, असहमति, मज़ाक और आलोचना का सामना करना पड़ा था उसके प्रत्युत्तर या प्रतिरोध के लिए प्रमुख छायावादी कवियों को स्वयं आलोचना का हथियार उठाना पड़ा। छायावादी कवियों ने अपने ऊपर हो रहे प्रहारों के प्रत्युत्तर में आलोचना का दायित्व भी संभाला और काव्य–पुस्तकों की समीक्षा करते हुए आलोचना पक्ष का संस्कार किया तथा छायावाद पर आरोपित भ्रांतियों से पाठकों को उबारा। पुस्तक–समीक्षा के स्तंभों में उन कविता–पुस्तकों को चर्चा में लाकर यह देखा जा रहा था कि इसमें नया क्या है? नये में कहन के ढंग का नयापन कितना है? और नये ढंग की नवीनता में छायावादीपन की संश्लिष्टता है या नहीं? असल में पुस्तक–समीक्षा के स्तंभ ही वह जरिया बन गये थें, जिसकें माध्यम से हिन्दी जनता छायावाद की नव्यता, प्रौढ़ता या परिपक्वता से रू–ब–रू हो रही थी। छायावादी परिवेश और रचनात्मक हलचलों, प्रवृत्तियों और प्रगति को कविता–पुस्तक समीक्षाओं ने गहरी समझ के साथ प्रतिबिंबित किया है। छायावाद युगीन कविता पुस्तक–समीक्षाओं से तत्कालीन साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक अभिप्राय की स्थिति भी स्पष्ट होती है। अभिप्राय यह है कि समाज और साहित्य में राष्ट्रीय स्तर पर गहरा आत्ममंथन चल रहा था, संस्कृति भी इससे अछूती नहीं रह गयी थी। ऐसे में आलोचकों पर स्वाभाविक दबाव था कि बदलते प्रतिमानों के आधार पर छायावाद युगीन रचनाशीलता का मूल्यांकन–पुर्नमूल्यांकन हो। पुस्तक–समीक्षकों के सामने यह दायित्व ज्यादा चुनौतीपूर्ण पर जरूरी था।